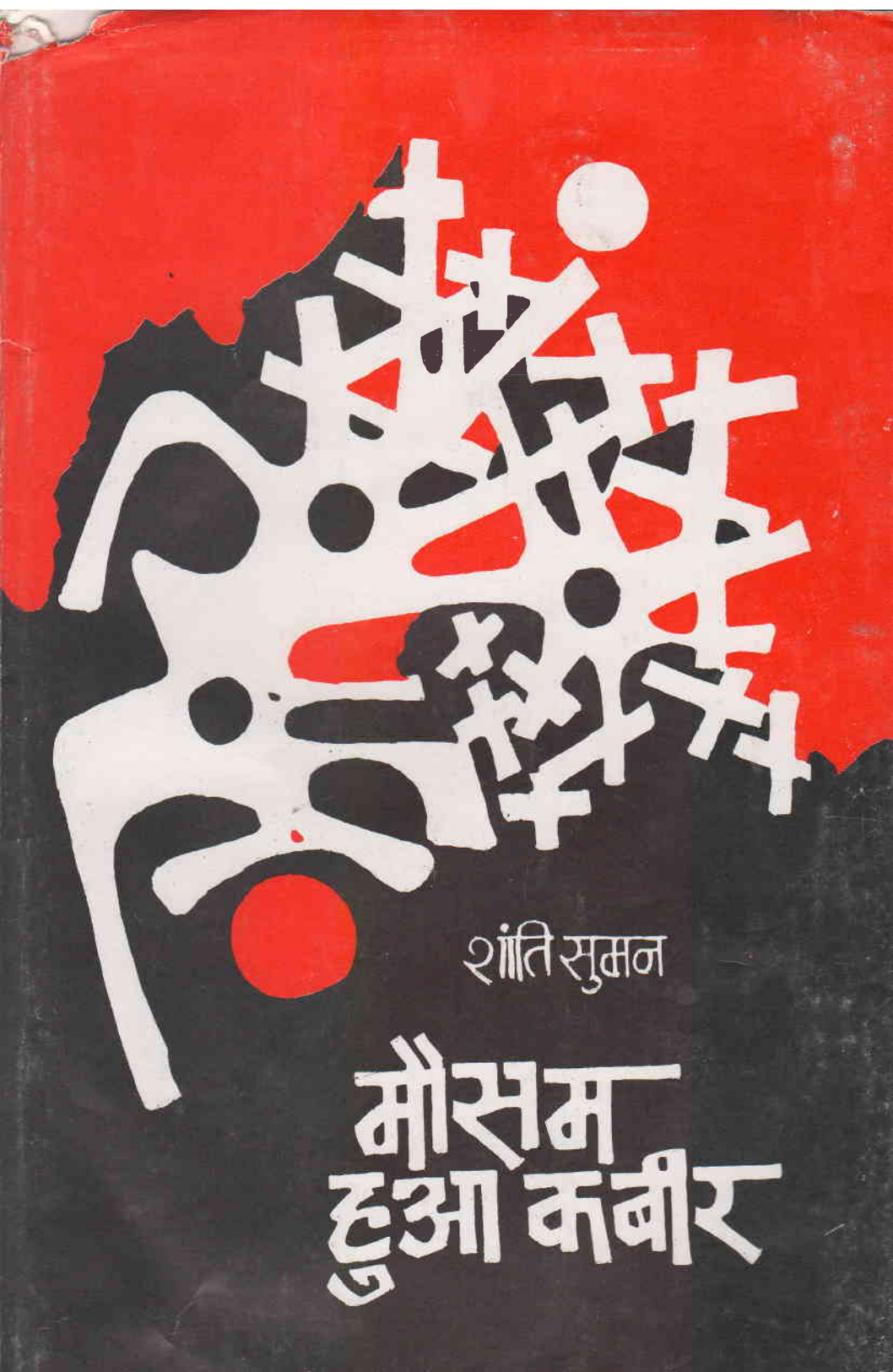

शांति सुमन

मौसम हुआ कबीर

शान्ति सुमन हिन्दी साहित्य की एकमात्र कवयित्री हैं जिन्होंने शोषित–पीड़ित जनता के दुख–दर्द को अपने गीतों में चित्रांकित किया है। वे शोषकों के खिलाफ दलितों–पीड़ितों को आगाह करती हैं और एकजुट होकर उन्हें संघर्ष के लिए प्रेरित करती हैं। **"मौसम हुआ कबीर"** उनके जनवादी गीतों की अगली कड़ी है। ज्ञातव्य है कि **"सुलगते पसीने"** से ही वे एक सशक्त जनवादी गीतकार के रूप में अपनी पहचान कायम कर चुकी हैं।

"मौसम हुआ कबीर" में समकालीन भयावह यथार्थ को उजागर किया गया है। वास्तव में ये जनवादी गीत शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ खड़ा होने का साहस और संकल्प हैं। चूँकि शान्ति सुमन मेहनतकश जनता के जीवन संघर्ष के प्रति जागरूक हैं–पक्षधर हैं–पैनी दृष्टि से लैस हैं इसीलिए इन गीतों से गुजरते हुए संघर्ष की राह अख्तियार करने को हम मजबूर हो जाते हैं।

"मौसम हुआ कबीर" के गीत जन साधारण (विशेषकर उ० प्र० और बिहार के लोकगायकों) में पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं। इसमें दो राय नहीं कि जनवादी गीतों को जनता के बीच जाना है, उन्हीं के बीच प्रचारित हो जीवित रहना है। इस संकलन के गीतों की सार्थकता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि जनता इन्हें स्वीकार कर रही है।

मौसम हुआ कबीर

[गीत-संग्रह]

मौसम हुआ कबीर

शांति सुमन

ईशान प्रकाशन
मीठनपुरा, क्लब रोड, मुजफ्फरपुर– 842002

प्रथम संस्करण ❑ 1985
द्वितीय संस्करण ❑ 1999
मूल्य ❑ 80 रुपये
प्रकाशक ❑ ईशान प्रकाशन
मीठनपुरा, क्लब रोड
मुजफ्फरपुर- 842 002
© ❑ शान्ति सुमन
मुद्रक ❑ एस. एन. प्रिंटर्स
एम-72 नवीन शाहदरा, दिल्ली-32
आवरण ❑ राजेन्द्र श्रीवास्तव

क्रम

थमो सुरुज महराज : 17
हम मुठभेड़ हुए : 19
बेटा माँगे चन्द्रमा : 20
हौसले का गीत : 21
दाने कहाँ गये : 22
हलके फौर हाथ में : 24
ईमान का गीत : 25
रोटी का सवाल : 26
रानी का गीत : 27
राजकुँअर का गीत : 28
मौसम हुआ कबीर : 29
अपनी ताकत दरसा रे : 31
दहक उट्ठी चोटियां : 32
आंधी चल रही है : 33
गवाही मत दैना : 34
माँ उसे देनी है : 35
लाल कवच पहने : 36
बोने को चिनगारी : 37
देश की लाठी हम हैं : 38
मौसम बड़े कमीने : 39
40 : बारूद बिछा देंगे
41 : पेट की आग
42 : भूखों नहीं मरेंगे हम
44 : अलाव का चारण
45 : करती रोशनी सुराखें
46 : बंटवारे का गीत
47 : फूल बोलेगा
48 : भरे पेटवाले दिन
49 : बांटो तुम चिनगारी
50 : कर्ज का हिसाब
51 : जंगल में बदली कौम
52 : तने हुए कच्चे घर-से
53 : खुशबू का आखर
54 : आंखों का सपना
55 : सही फैसले का गीत
56 : खुशियों की ताबीज गले में
57 : बदलाव का गीत
58 : किसानों का गीत
59 : लड़ना अधिकारों की खातिर
60 : बहती नदी का गीत

मिहनत का गीत : 61
सुनो तेज रफ्तार खून की : 62
कटाई का गीत : 63
मां का सपना : 64
इरादे बेहद कड़े हैं : 65
प्रतिगामी चेहरे का गीत : 66
रोशनियों का तय होना : 67
बाढ़ की कथा : 68
आंखों पर ताले : 69
हमें खसब लगे : 70
फौलाद बनेंगें : 71
सुविधा का मौसम : 72
73 : धूप-छांह का गीत
74 : हल-सी जिन्दगी
75 : घर में पूरनमासी
76 : स्वप्न सबेरे का
77 : फूल की लाल पंखुड़ियां
78 : दूध-फूल-से बढ़ेंगे
80 : अंधेरे के खिलाफ
81 : नौजवानों का गीत
82 : रोशनी के काफिले
83 : एक जोड़ा हाथ
84 : वक़्त फैसले का

भूमिका

अपनी वैज्ञानिक जीवन -दृष्टि, सचेतन जनपक्षधरता और प्रगतिशील अन्तर्वस्तु की वजह से समकालीन जनवादी गीत -रचना एक सुनिश्चित आकार ग्रहण कर चुकी है। सर्वसम्मति से यह बात लगभग सिद्ध हो चुकी है कि साहित्य और जन-साधारण के बीच सीधा संवाद कायम करने की दिशा में नाटक और गीत सर्वाधिक कारगर साहित्यिक माध्यम हैं। अधिकांश आलोचकों का ख्याल है कि समकालीन जनवादी गीतों को संघर्षधर्मी जन-चेतना के निर्माण में हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है और विभिन्न इलाकों में चल रहे जन-संघर्षों को गतिशीलता प्रदान करने की खातिर उनका मुकम्मल नारे के रूप में व्यवहार किया जाना चाहिए। इस सकारात्मक स्वीकृति के बावजूद समकालीन जनवादी गीतों को आलोचकीय तटस्थता का संत्रास भी झेलना पड़ रहा है। प्रायः जनवादी आलोचक भी जब कभी समकालीन कविता के स्वरूप और संभावना की जांच -पड़ताल या विश्लेषण-अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं, तो या तो गीत-रचना को नितांत सहूलियत से नजरअंदाज कर देते हैं अथवा बिल्कुल दयाभाव से उसकी महज याद भर कर लेते हैं। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। वस्तुतः इस परिघटना में साहित्य और सामान्य जन के बीच अलगाव की भ्रामक अवधारणा रखने वाली पूँजीवादी और निम्न पूँजीवादी मनोवृत्ति का प्रेत सिर पर चढ़कर बोल रहा होता है। इस विडम्बनापूर्ण परिस्थिति में भी जनवादी गीत-रचना एक सप्राण और विकासशील रचना-दृष्टि के रूप में निरन्तर विकसित हो रही

है।

जनवादी गीत -रचना की रचना प्रक्रिया काफी जटिल और दुहरी होती है। यहाँ भावों की गहराई, अनुभूति की सघनता और आकार में संक्षिप्तता पर विशेष बल दिया जाता है। क्रांतिकारी वैचारिक अन्तर्वस्तु को लोकप्रिय और सहज प्रभावी अन्तर्वस्तु से अन्तर्ग्रथित करना पड़ता है। मगर कभी-कभी इस रचनात्मक द्वन्द्व को रचनाकारों द्वारा बड़े ही सरलीकृत ढंग से ग्रहण किया जाता है। नतीजतन रचनाएँ अमूमन सपाटबयानी और वक्तव्यबाजी का शिकार होकर रचनाकारों की राजनीतिक अवधारणाओं का संवेदनाशून्य दस्तावेज बनकर रह जाती हैं अथवा वैचारिक अन्तर्वस्तु की रिक्तता को ढँकने के लिए कला और शिल्प पर अधिक केन्द्रित होने के कारण रूपवाद की गिरफ्त में फँस जाती हैं। निर्विवाद है कि कला का सामूहिक संसार यथार्थ सामाजिक जीवन के सामूहिक संसार द्वारा पोषित होता है। इन्हीं कारणों से उनका निर्माण उन उपकरणों से होता है जो अपनी गठन तथा संवेगात्मक संबंध सामाजिक प्रयोगों से प्राप्त करते हैं, किन्तु समाज से कट जाने पर आत्मलीन एकाकी रचनाकारों के पास इसके सिवाय और कोई चारा नहीं रह जाता कि वे अपनी आन्तरिक और वैचारिक रिक्तता को ढँकने के निमित्त कला और शिल्प पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित करें। इस कलावाद और रूपवाद की उत्पत्ति तभी होती है, जब रचनाकार उस सामाजिक जीवन से अपने को पूरी तरह से काट लेता है जो साहित्य-सृजन का नियामक तत्त्व और कला की बीज-वस्तुओं का प्रधान स्रोत हैं। चूँकि कला सामाजिक संसार में ही अपना अस्तित्व रखती है; इसलिए गीत का निर्माण मात्र ध्वनियों और शब्दों के द्वारा कतई संभव नहीं है। इसका निर्माण एक व्यवस्थित शब्द-भंडार से चुने गये शब्दों और समाज द्वारा स्वीकृत स्वर-ग्राम से निःसृत अर्थयुक्त ध्वनियों की अनुगूंज से होता है। ये सारी वस्तुएँ सामाजिक, संवेगात्मक और भावात्मक सम्बन्धों से युक्त होती हैं। कहने का तात्पर्य है कि सही जनवादी गीत की रचना तभी संभव है, जब युगानुरूप संघर्षशील क्रांतिकारी वैचारिक अन्तर्वस्तु के साथ रूप और शिल्प का सहज तादात्म्य हो।

साहित्य- सृजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया और रचनाकार की समूची

पीड़ा यथार्थ के साथ उसके हिंस्र संघर्ष में देखी जा सकती है ताकि इसके परिणामस्वरूप वह संसार की एक सही वस्तुगत तस्वीर गढ़ सके। इसीलिए तत्काल जनवादी गीत-रचना के सामने कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। सत्य है कि समकालीन जनवादी गीत रचनाओं में सामाजिक यथार्थ को अपने अनुगूंजात्मक प्रभाव से खण्ड-खण्ड रूप में व्यक्त किया जाता है। यह अलग बात है कि किसी एक रचनाकार की सम्पूर्ण गीत -यात्रा की अंतर्यात्रा करके उसके सामाजिक जीवन-संघर्ष और उसके द्वारा निर्मित वस्तुगत दुनिया का समग्र साक्षात्कार किया जा सकता है। किन्तु अब तक किसी एक ऐसे गीत की रचना संभव नहीं हुई है, जिसमें एक पूरे काल-खण्ड को उसके ऐतिहासिक और सामाजिक सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य में व्यक्त किया गया हो। यह एक जोखिम भरी और श्रमसाध्य चुनौती है। इसीलिए बड़े ही अनुशासित और नियंत्रित होकर ही इस चुनौती को कबूल करने की आवश्यकता है।

सामाजिक संघर्ष के एक विशेष ऐतिहासिक काल-खण्ड में रचना-कर्म से सरोकार रखनेवाले समानधर्मा और समान विश्व-दृष्टिकोण से लैस रचनाकारों में तथ्यात्मक एकरूपता हो जाती है। ऐसी स्थिति में एक जागरूक रचनाकार की रचनात्मक शक्ति इस बात में निहित होती है कि वह जन-सामान्य के तात्कालिक सांस्कृतिक स्तर के अनुरूप अपनी स्वतंत्र काव्य-भाषा का निर्माण करे अन्यथा उसकी पहचान और अस्मिता सदैव खतरे में होगी। हम जानते हैं कि सजीव भाषा का निर्माण संघर्षशील मेहनतकश जनता अपनी आवश्यकताओं के तहत करती है और जनता की भाषा एक कच्चे माल की तरह होती है। एक सजग रचनाकार जनता की इस अनगढ़ भाषा को पहले आत्मसात् करता है फिर उसे तराशकर पुनः जनता को ही सौंप देता है। आज के जनवादी गीतकारों ने इस दिशा में ठोस पहल की है, जिसकी वजह से जनता और जनवादी गीत की भाषा में बहुत बड़ा अन्तराल नहीं है। फिर भी अलग-अलग गीतकारों की शब्द-योजना, बिम्ब-विधान और प्रतीक-संयोजन में काफी विविधता है और यही उनकी अलग-अलग पहचान की द्योतक है।

विचारों की अभिव्यक्ति जहाँ राजनीति तथा उससे मिलते-जुलते

अन्य रूपों के द्वारा प्रत्यक्षतः अनुशासित होती है, वहाँ जनवादी गीत बिम्बों और प्रतीकों का आश्रय लेता है। बिम्बों के अभाव में गीत-रचना का अस्तित्व ही संकटग्रस्त हो सकता है। हाँ, बिम्ब अमूर्त कल्पना-लोक से नहीं, वरन् सीधे सामाजिक जीवन से प्राप्त किये जाते हैं। इसी कारण से जनवादी गीत की जीवन्तता और यथार्थपरकता अक्षुण्ण है। बिम्बों और प्रतीकों के स्थान पर महज राजनीतिक विचार एवं नुस्खे तथा जीवन्त एवं प्राणवान जीवनानुभवों के स्थान पर केवल विचारों के आडम्बर से गीत-रचना मृत हो जाती है। इसीलिए जरूरी है कि कला की मूलभूत चरित्र-संगति में ही राजनीतिक विचारधारा को ग्रहण किया जाय ताकि कला के साथ विचारों का संतुलन बरकरार रहे, क्योंकि जनवादी कला जीवन को ही अपना स्रोत मानती है और सीधे जीवन से प्राप्त अनुभवों और प्रेरणाओं को महत्त्व देती है। इसके लिए जीवन की भूमिकाओं में गहरी पैठ की जरूरत है, न कि अमूर्त सामान्यीकरण की।

साहित्य का उद्देश्य खुद अपने को जानने में मनुष्यों की मदद करना, उनके आत्मविश्वास को दृढ बनाना, सत्यान्वेषण को सहारा देना, लोगों की अच्छाइयों को उद्घाटित करना और बुराइयों का उन्मूलन करना, लोगों के हृदय में हयादारी, गुस्सा और साहस पैदा करना, बड़े और दीर्घकालीन उद्देश्य के लिए शक्ति बटोरने में सहायता करना तथा सौन्दर्य की पवित्र भावना से उनके जीवन को शुभ्र बनाना है। इसीलिए साहित्य का कार्य केवल बदलते हुये मनुष्य को सूचना भर देना नहीं है, प्रत्युत उसका दायित्व उन संवेगात्मक क्रियाओं को चित्रित करने में है, जो मनुष्य के परिवर्त्तन को सूचित करे। अतः जनवादी गीत की सार्थकता मनुष्यों की सम्पूर्ण मूल्यवान व्यक्तिगत क्षमताओं को उभारते हुए मनुष्यों को प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करके अपने जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाने तथा अंततः सम्पूर्ण मानवता को एक मुकम्मल परिवार के रूप में देख सकने के स्वप्नों को साकार करने में मदद पहुँचाने में निहित है।

"मौसम हुआ कबीर" हमारे इसी उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में एक लघु प्रयास है। इसमें संकलित गीत अमूमन वर्ष 1979 से 1984 के

बीच रचे गये गीतों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि इनमें से अधिकांश विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और जन-मंचों के माध्यम से प्रसारित होकर अपने पाठकों और श्रोताओं के भरपूर प्यार के हकदार हो चुके हैं। मगर ये एक जगह एकत्र होकर, अपनी समग्रता में, मेरी गीत-यात्रा के विभिन्न पड़ावों और विकास के सूचक हैं। अगर हमारे ये गीत अपने पाठकों और अध्येताओं को थोड़ी- सी भी राहत, ताकत और संतोष देने में सक्षम हुए तो मैं अपना श्रम और रचना-कर्म सार्थक मानूँगी।

अन्त में, अपने तमाम मित्रों और शुभचिन्तकों की मैं चिरकृतज्ञ हूँ, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेरे विकास में सहायक सिद्ध हुए हैं। जनवादी कवि-विचारक कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, महेश्वर, रामनिहाल गुंजन आदि की मैं विशेष तौर से शुक्रगुजार हूँ जिनके द्वारा समय-समय पर दिये गये सुझावों और परामर्शों ने मेरे लिए मशाल का काम किया है। जनवादी गीतों में सार्थक पहल करनेवाले रचनाकार नचिकेता को धन्यवाद देना उसके सहज स्नेह को कम करना होगा, इसलिए अपने गंतव्य की पहुँच में उनकी सहयात्रिता स्वीकार करती हूँ। मेरे रचना-कर्म को निरन्तर गतिशील करने वाले पति जागेश्वर लाल, पुत्री चेतना और पुत्र मुकुल (अरविन्द) के आत्मीय सहयोग की चिरआकांक्षिणी हूँ तथा पूज्य पिता श्री भवनन्दन लाल के आशीर्वचनों की मुझे हमेशा जरूरत रहती है, जिनकी परिष्कृत और गहरी साहित्यिक रूचि और आत्मीय प्रोत्साहन ने मेरे विकास का मार्ग प्रशस्त किया है।

मीठनपुरा, क्लब रोड (रमना)
मुजफ्फरपुर - 842 002

शांति सुमन

प्रासंगिक

'मौसम हुआ कबीर' का प्रथम संस्करण 1985 में प्रकाशित हुआ था। तब से अब तक गीतों की मूल प्रवृत्ति के नहीं बदलने पर भी उसकी अवधारणाओं में कई परिवर्त्तन और विकास भी लक्षित हुए हैं। 1970 में जब मेरा प्रथम नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' आया था, तब पूरे देश में नवगीत आन्दोलन के उत्कर्ष पर रहने के बावजूद कुछ ही नवगीतकारों के संग्रह प्रकाशित हुए थे। राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शम्भु नाथ सिंह, रमेश रंजक, उमाकान्त मालवीय, वीरेन्द्र मिश्र आदि कुछ नवगीतकारों के संग्रह ही प्रकाश में आये थे। शेष पत्र-पत्रिकाओं में ही छप रहे थे। कुछ तो बिहार में होने के कारण और उसपर प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार की असुविधाओं के बीच भी मेरी गीत-यात्रा अविराम चलती रही।

समकालीन कविता के विकास की अनिवार्य परिणति के रूप में जब नवगीत का निर्णायक मूल्यांकन प्रारंभ हुआ तब नई कविता के कवियों के गीत-विरोधी स्वर खुलकर सामने आये। डॉ० धर्मवीर भारती ने धर्मयुग में उन्हीं दिनों पाँच नवगीतकार और एक नवगीतकर्त्री के वक्तव्य छापकर नवगीत का मुकम्मल इतिहास स्थिर होने दिया और नई कविता के विरोधियों को रचनात्मक उत्तर भी दिया। वह नवगीतकर्त्री मैं थी। अपने वक्तव्य के साथ मैंने गीत के लिए जो जिम्मेदारी महसूस की, वह आज भी मेरे साथ है।

मैं मानती हूँ कि अन्य वस्तुओं की तरह साहित्य में भी परिवर्त्तन लक्षित होते रहते हैं। यह परिवर्त्तन देश-काल अर्थात् समसामयिक समाजार्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप होता है। प्रारम्भ से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल में भी साहित्य में कई वादों एवं जनान्दोलनों के अनुरूप साहित्यक विधाओं के बदलने एवं कई संज्ञाओं से अभिहित होने को

इसका प्रमाण माना जा सकता है।

गीत जन-जीवन से सार्थक संवाद स्थापित कर सके, इसलिये उसका जनप्रिय होना आवश्यक है। उसको लोकप्रिय होना भी कह सकते हैं। नवगीत से जनवादी गीत की यात्रा में गीत की श्रमजीवी-संघर्षरत जनता तक पहुँच की भूमिका भी प्रभावी रही है। ब्रेख्त ने कहा है कि "लोकप्रिय वह साहित्य या कला है जो व्यापक जनता के लिए बोधगम्य हो, जिसमें जनता के अभिव्यंजना -रूपों को अपनाया और विकसित किया गया हो।" लेनिन ने भी ऐसा माना था और हिन्दी आलोचना में डॉ० मैनेजर पाण्डेय भी मानते हैं कि लोकप्रिय लेखन की पाठकों में आस्था होती है। पर उन्होंने जो संकेत दिया है उससे यह बात समझ में आती है कि लोकप्रियता कलाहीन नहीं हो सकती। अर्थात् कलाहीन रचनाएँ लोकप्रिय नहीं होतीं।

युगीन परिस्थितियों के दबाव में नवगीत जनवादी गीत के रूप में विकसित और समृद्ध हुआ। जनवादी गीत में जीवन से ली गयी अंतर्वस्तु और रूप की एकता होती है। उसमें अभिप्राय और प्रभाव की भी एकता होती है।

गीतों का कलात्मक सौन्दर्य अथवा श्रेष्ठता वस्तु और रूप के सामंजस्य में व्यक्त होती है। गेयता गीत की पहचान ही नहीं, शक्ति भी होती है। कविता से इसी पहचान और शक्ति के कारण वह अधिक सशक्त और समर्थ भी होता है।

नवगीत से जनवादी गीत तक सशक्त और निष्पक्ष आलोचनाओं का अभाव रहा। यह एक निर्मम तथ्य है कि छायावादी कवियों ने स्वयं के बारे में बहुत लिखा। इससे यह एक बात भी बनी कि छायावाद को पारिभाषित एवं उसके संवेदना-सूत्रों को समझाने का काम छायावाद के कवियों ने आलोचकों से पहले ही कर लिया था फिर तो उन पर आलोचकों की सक्रियता पूरी निष्ठा से देखी गयी। छायावाद के गीतकार एक दूसरे पर भी बहुत लिखते थे और इस तरह गीतकार को पाठकों तक पहुँचा रहे थे। किसी विधा को स्थापित करने में इससे बड़ी सुविधा होती

है। फिर एक गीतकार गीत को जितना समझ और लिख सकता है, उतना आलोचक नहीं। नवगीत और जनवादी गीत में इस प्रवृत्ति की अनुपस्थिति रही। इन गीतों को आलोचकों का भी अभाव रहा और गीतकार ऐसे रहे कि केवल गीत लिखकर वे अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठे। एक दूसरे के गीतों पर लिखना तो दूर, अपने गीतों पर भी वे विस्तार से नहीं लिख सके। छिटफुट टिप्पणियों और गीत-संग्रहों की संक्षिप्त भूमिकाओं के आधार पर ही किसी गीत और गीतकार को समझने की सुविधा हुई।

उत्तर छायावादकाल के बाद से ही गीत का सैद्धांतिक और व्यावहारिक विवेचन नहीं हुआ। आलोचकों ने बड़ी सतही मानसिकता से गीत को कभी क्षेपक का विषय बनाया तो कभी गायन शैली कहकर उसकी उपेक्षा की। कुल मिलाकर एक सोची गयी रणनीति के तहत गीत की सैद्धांतिक चर्चा नहीं हुई। उसके मूल्यांकन के प्रतिमान-निरूपण नहीं हुए। शास्त्रीय और व्यावहारिक आधारों के नहीं रहने के कारण उत्तरकाल में कुछ मानक गीत संकलनों के निकलने के बावजूद उनकी चर्चा नहीं हुई। गीतकार भी इस दिशा में उदासीन रहे। कदाचित उन्हें किसी नामवर की प्रतीक्षा रही अथवा अपने रचना-कर्म में उनको इतनी आस्था रही कि वे आलोचना के लिए अधिक चिन्तित नहीं हुए। इसके मूल में एक कारण यह भी हो सकता है कि गीतकार गद्य लेखन पूरी तरह करना नहीं चाहते और जब चाहते हैं, तब बहुत देर हो चुकी रहती है।

फिर भी, गीत किसी आलोचना की बैशाखी पर कभी नहीं चलता। गीत के लिए आलोचना होती है, अलोचना के लिए कभी गीत नहीं लिखा जाता।

गीत एक सामाजिक उत्पादन है। जनता गीत और नाटक से जितना जुड़ती है, साहित्य की अन्य विधाओं से नहीं। ऐसी जीवन्त विधा आलोचकों के कारण अचर्चित रहे-यह दायित्व गीतकारों का भी है। आश्चर्य है कि वे आलोचक गीत के बारे में नहीं लिखते जो मानते हैं कि मानवीय प्रेम और शृंगार के स्वर तथा व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए सामाजिक स्वाधीनता की मांग पहले गीतों में ही हुई।

लघु पत्रिकाओं में अधिकांशत: गीत प्रकाशित नहीं होते। गीत के लिए उनमें सहिष्णुता का अभाव होता है। अपने मसीहाओं से ऐसी पत्रिकाओं के सम्पादक जो सुन चुके होते हैं, गीतों के बारे में वैसी ही धारणा बना लेते हैं। अपने साहित्यिक आस्वाद को वे नहीं बदल पाते। होता यह है कि एक संक्षिप्त सशक्त गीत भी कई-कई रचनाओं पर अपना दबाब बना देता है। इसलिये किसी कुंठा के तहत भी यह होता है कि लघु पत्रिकाओं में गीत अनदिख हो जाता है। अब सामाजिक-राजनीतिक चेतना के सघन होते हुए इस समय में सम्पादकों और पाठकों की रुचि में परिवर्त्तन हो और उनमें गीत की समझ विकसित हो -यह आवश्यक है। ऐसी कई पत्रिकायें पहले छपती थीं जिनमें गीतों के लिए प्रभावी भूमिका बनाने की अद्‌भुत क्षमता थी। उन्होंने गीतों के पाठक-वर्ग भी तैयार किये। गीतों की चर्चा बड़े जोर-शोर से होने लगी थी। तब वैसी पत्रिकाओं के कारण जाने कितनी ही कहानियों पर आधारित पत्रिकायें निकलने लगीं। डॉ० मैनेजर पांडेय जैसे विद्वान और वरिष्ठ जनवादी आलोचक ने गीतों पर अपने वक्तव्य दिये, समीक्षा भी प्रस्तुत की। तब गीतों के प्रचार-प्रसार के लिए जिस जमीन को तैयार किया गया, कालान्तर में उससे गीत विधा को काफी बल मिला।

फिल्मों के सस्ते सायास लिखे गीतों की हलचल और मुक्त बाजार व्यवस्था ने साहित्यिक गीतों को असुरक्षित करने का जो प्रयास किया है वह एक चुनौती के रुप में हमारे सामने है। एक तो निष्क्रिय आलोचक और दूसरी इस व्यावसायिकता के कुप्रचार ने गीतकार को जब-तब उदास किया है। ऐसा ही समय पहले भी था और यही वह समय है जब गीतकार रचनात्मक पहल के द्वारा अपनी उपस्थिति दर्ज करे। किन्ही भावुकताओं के कारण यह काम नहीं हुआ है। पर समय बीतता नहीं, समय तो आता रहता है। आवश्यकता है इन चुनौतियों को स्वीकार कर गीतकारों की प्रतिबद्ध एकजुटता की। इसी से यह अँधेरा छँटेगा। वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक समय में गीतों की बड़ी सामाजिक भूमिका और दायित्व है -इस आलोक में गीत का व्यक्तित्व निखर भी उठेगा।

सम्प्रति यह कहना प्रासंगिक है कि 'मौसम हुआ कबीर' की एक

प्रतिमात्र मेरे पास शेष रह गयी थी। गीतों विशेषकर जनवादी गीतों पर अखिल भारतीय स्तर पर चर्चा के क्रम में मुझसे 'मौसम हुआ कबीर' की प्रति की मांग की जाती रही। आलोचकों, मित्रों और शुभैषियों की मांग और आग्रह पर इसके पुनर्मुद्रण का विचार मन में आया। शोधार्थियों को भी शोध के क्रम में इसकी अपेक्षा रही। लोग फोटोस्टेट करके गीतों को भेजने का आग्रह करने लगे। इस कारण 'मौसम हुआ कबीर' की एक मात्र प्रति क्षतिग्रस्त न हो जाए; विशेषकर श्री मिर्मल मिलिन्द, डॉ० नरेन्द्र झा पति जागेश्वर लाल, पुत्र श्री अरविन्द और पुत्री श्रीमती चेतना के बार-बार कहने के कारण इसका पुनर्मुद्रण हो रहा है। तब 1985 में जब यह पहली बार प्रकाशित हुआ था और आज जब इसका पुनर्मुद्रण हो रहा है, हमारी पारिवारिक संरचना भी गीतों की तरह समृद्ध हुई है। पुत्रवधू डॉ० विशाखा वर्मा और जामाता श्री सुशान्त वर्मा के साथ अपने अन्तर की धरती पर और भी गीतों की फसल उगाने के लिये पौत्री और पौत्र शालीना तथा ईशान और मेरी बेटी की दो नितान्त निजी रचनायें अपूर्व और श्रेयसी के अजस्र प्यार, कांच की तरह टूटने वाली जिद और आँखों भरी हुई लय-तान भी हैं।

पूज्य पिता श्री भवनन्दन लाल जो अब श्री कुँवर बाबा हैं, के अपरिमित आशीष और स्वर्गीया माँ के रचनात्मक अवदानों को प्रणाम करती हूँ जिनसे मुझे गाँव-घर, खेत-खलिहान, हल-बैल, श्रम-संघर्ष, ऋतु-गंध, मानवीय संबंध आदि की संवेदनायें और अनुभव मिले।

इस क्रम में सुश्री रश्मि रेखा और डॉ० रेवती रमण के आत्मीय स्नेह भी स्मरणीय हैं।

जॉब प्रिन्टर्स के श्री विजय कुमार को स्नेह जिन्होंने समय पर मेरा काम आसान किया।

मुजफ्फरपुर
२५ मार्च १९९९

शान्ति सुमन

लाल कवच पहने गीत

डॉ० रेवती रमण

'राग में गीतगोविन्द गाया जाता है, विराग में गीता गयी जाती है' - यह सूक्ति आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री की है। हिन्दी में श्रेष्ठ गीत राग और विराग के इन दो छोरों पर ही लिखे गये हैं। निराला हिन्दी के सबसे बड़े गीतकार हैं तो इसलिए कि दोनों छोरों को आत्मसात कर कई बार वे बीच की जगह भी भर पाते हैं। यह अलग बात है कि उनकी काव्य-चतुरंगिनी में शुरू से अन्त तक हर साँस के साथ होने पर भी गीत आन्दोलन की वस्तु नहीं बने। डॉ० राम विलास शर्मा ने उचित ही निराला की प्रतिनिधि कविताओं का संग्रह 'राग-विराग' के नाम से सम्पादित किया था। राग का गहरा संबंध रूप से है और यह राम विलास जी के यहाँ 'रूप तरंग' हो गया है तो आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री के यहाँ 'रूप-अरूप'। डॉ० शान्ति सुमन राग और रूप ही लिखती रहीं, विराग और अरूप ने कभी उन्हें आकर्षित नहीं किया तो उसके पीछे उनकी गतिशील यथार्थ की समझ और विकासशील वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि है। मिथिला की जनपदीय लोक चेतना और गेय संस्कार उनके गीतों में 'स्व-भाव' की तरह शुरू से ही विन्यस्त रहे हैं। उनमें माँ की लोरी और पहरुए की प्रभाती गेय रूप में सहज और प्रभाव के स्तर पर अक्सर अचूक रही है। कहीं-कहीं उत्सवधर्मी आयोजनों की स्नेहिल सामाजिकता भी। उनकी तीर की तरह नुकीली, अचूक गीति- प्रतिभा शुरू में अत्यन्त चमकदार थी, आज भी है जिसका रचनात्मक विन्यास 'नवगीत' से लगाकर 'जनगीत' और 'जनवादी' गीत का परचम लहराने के लिए किया गया।

बहरहाल, मैं मानता हूँ कि शान्ति सुमन के भीतर गीत की संवेदना निश्छल है, अमिश्रित है। उनके भावावेश अलंकृत नहीं, स्वभावजन्य हैं। वे गीत रचने और उनकी सम्यक प्रस्तुति के लिए ही बनी हैं। संभव है, जन आन्दोलनों का पीछा करने की प्रेरणा उन्हें उद्दाम युग चेतना से मिली हो।

शान्ति सुमन छायावाद की महीयसी महादेवी से न मुठभेड़ करती हैं और न उनके चरण-चिह्नों का अनुसरण ही, पर कोई चाहे तो सुभद्रा कुमारी

चौहान की अगली कड़ी के रूप में उनकी जन-सम्बद्धता परख सकता है। खास बात यह है कि उनके गीतकार की जड़ें मिथिला में हैं। उनके गीतों में जयदेव भी हैं, विद्यापति और शुरुआती दौड़ के नागार्जुन भी। महादेवी के प्रगीत कल्पना-समृद्ध हैं, वे कलागीत के शिखर हैं, परन्तु उनका कोई जनपदीय आधार नहीं है। उनमें जैसे कोई मनोरम स्त्री शरीर नहीं, वैसे ही उनका कोई व्यवस्थित भूगोल भी नहीं, हर साँस का इतिहास लिखने के दावे के बावजूद। जबकि शान्ति सुमन के गीतों में मिथिला को गंभीर रचनात्मक प्रतिनिधित्व मिला है। मैथिल संस्कृति के वे सारे उपकरण जो नागार्जुन की कविता को अमरता देनेवाले हैं, बड़े शालीन तरीके से शान्ति सुमन के गीतों में भी सक्रिय हैं।

शान्ति सुमन के गीतों में दूसरी मूल्यवान चीज है- राग संतप्तता,समूह गान रचने की अभ्यस्त सैन्य तप्तरता के बावजूद जहाँ कहीं नारी - हृदय की वेदना- विह्वलता झलकती है, लक्षित होती है - गीत का रंग निखर उठता है। कम ही सही उन्होंने ऐसे गीत भी लिखे हैं, जिनमें उनका प्रसन्न व्यक्तित्व गेंदे के फूल की तरह अपनी आभा और रंग-गंध से राह से गुजरने वालों के पाँवो को जड़ीभूत कर दे। राजनीतिक लिखने में उनकी बौद्धिक ऊर्जा का अपव्यय हुआ है, ऐसा हम नहीं कहते। कविता बनाम जनपक्षधरता के द्वन्द्व में कविता का पक्ष क्रमशः उजागर होता गया है। हिन्दी में कम गीत ऐसे लिखे गये हैं जिनमें जनपक्षधरता हवाई मुठभेड़ नहीं, काव्य-संस्कार का बोध जगाये।

यह सच है कि कविता का वामपक्ष डॉ० शान्ति सुमन को एक जनपक्षधर कवयित्री के रुप में ही स्वीकार करता रहा है। मिथिला की गरीबी और भुखमरी के बीच दलित उभार ने उन्हें जनपक्ष में आवेगपूर्ण और आक्रामक भी लिखने की प्रेरणा दी है। नवगीत ही नहीं 'जनगीत' और 'जनवादी गीत' रचना के उनके अपने तर्क हैं, विचार हैं। गरज कि प्रयोगशीलता प्राणवायु की तरह है इन गीतों में और कवयित्री का मन पुनः -पुनः समय के साथ चलता है। ऐसे में, चाहतीं तो वे देर तक गीतों को स्मृति-समृद्ध कर सकती थीं, पर साथ की भीड़ और समय ने उकसाया लिखने को 'मौसम हुआ कबीर'। अनुभूति के साथ यथार्थ के अनुभव बोलने लगे। 'सुलगते पसीने' और 'पसीने के रिश्ते' में गीत-तंत्र हावी है - संरचना चुस्त-दुरूस्त है। उनमें कम्यूनिस्ट कही जानेवाली राजनीति से जुड़ने की लालसा, वामपंथी रूझान और कौशल निश्छल और सुघड़ हैं।

❖❖❖❖

दादी को

थमो, सुरुज महराज

थमो, सुरुज महराज
नयन काजर भर लें
बोये पिया पसीना
फसल सगुन कर लें

सूखी रोटी के दुख
हमने बरस जिये
तन का फटा अंगोछा
शीत न घाम सहे
बहो, हवा हे झिर-झिर
तनिक अरज कर लें
अबके उपज सोनमाटी
परब सब दुख हर लें

टूटे ऊपर छान
चान घर -बीच उगे
चमके हल की नोंक
करज - चिनगी सुलगे
गाओ, बाँकी पुरवा
फुहियों - से झर लें
भीगे सपने पात-
पात दरपन भरमे

माथे लाल सिनूर
फूल ये अड़हुल के-
अगुआरे-पिछुवारे फूले
अगन जलाये मिल के
सही, चलो सब मिल
दुखको आंचर कर लें
दुहरे होते चलें पिया
ये रुत डर लें
(५ जून '७६)

❑

हम मुठभेड़ हुए

थाली उतनी की उतनी ही
छोटी हो गयी रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की
सबसे बूढ़ी दादी अपने गाँव की

फेन-फूल-से उठे, मगर राखों के ढेर हुए
धँसे हुए आँखों के किस्से, हम मुठभेड़ हुए
भूख हुई अजगर-सी, सूखी
तन की बोटी-बोटी
कहती बड़की काकी अपने गाँव की
सबसे सुन्दर काकी अपने गाँव की

अपना तो घर गिरा, दरोगा के घर नये उठे
हाथ और मुँह के रिश्ते में ऐसे रहे जुटे
सिर से पाँवों की दूरी अब
दिन-दिन होती छोटी
कहती नवकी भौजी अपने गाँव की
सबसे गोरी भौजी अपने गाँव की

करना होगा खत्म कर्ज, यह सूद उगाही, लहना
लापरवाह व्यवस्था के खूँटे में बँधकर रहना
नाम भूख का रोटी पर
जीतेगी अपनी गोटी
कहती रानी बहना अपने गाँव की
सबसे प्यारी बहना अपने गाँव की

(१५ फरवरी '८१)

बेटा माँगे चन्द्रमा

फटी हुई गंजी न पहने
खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये, माँगे
एक पूरा चन्द्रमा

पाटी पर वह सीख रहा
लिखना ओ ना मा सी
अ से अपना, आ से आमद
धरती सारी माँ - सी
बाप को हल में जुते देखकर
सीखे होश सम्हालना

घट्ठे पड़े हुए हाथों का
प्यार बड़ा ही सच्चा
खोज रहा अपनी बस्ती में
दूध नहाया बच्चा
बाप सरीखा उसको आता
नहीं भूख को टालना

अभी समय को खेतों में
पौधों - सा रोप रहा
आँखों में उठनेवाले
गुस्से को सोच रहा
रक्तहीन हुआ जाता
कैसे गोदी का पालना

(१७ मई '८३)

हौसले का गीत

फूलो फूल कनेर, हौसला लेकर फूलो रे

इन हाथों से लगातार
हमने पत्थर फोड़े
तोड़ स्वयं को जाने कितने
प्रश्नों के मुँह मोड़े

उठते हुए सवालों से शाखों पर झूलो रे

बहते हुए पसीने को हम
तमगों - से पहने
नहीं देखतीं आँखें अब
रेगिस्तानी सपने

जख्मों-से अब रिसो नहीं, महुओं-से चू लो रे

हम मेहनतकश, हमें पता
है आँधी-बंजर का
जंग छुड़ायेंगे अपने
सपनों के खंजर का

चलो, बढ़ो, जल उठो, लाल शिखरों को छू लो रे

(१६ फरवरी '७६)

दाने कहाँ गये

बेटे बोलो, तेरे घर के
दाने कहाँ गये

एक कँटीली चारदीवारी
तेरे घर के पीछे
धुआँ उगलती रहती दाबे
सब कुछ अपने नीचे
धीरे फैले असर जहर के
दाने कहाँ गये

कैसे बेघर हुए घरों से
कैसे किया गुजारा
वासगीत भी गया करज में
मिली भूख की कारा
बाबू तेरे बिके शहर के
दाने कहाँ गये

कुछ तो लूटे अफसर-नेता
कुछ को साहूकारों ने
उससे ज्यादा पुलिस-कचहरी
बाकी चोर बजारों ने
खा न सके अब तक जी-भर के
दाने कहाँ गये

दिन पर दिन चर्बी बढ़ते
पेटों के ये रखवाले
खाते - खाते मरें, मगर
तेरे पेटों पर जाले
माँ की आँखें सहमे डर के
दाने कहाँ गये

आँखों में रोशनी नहीं
औ' बाँहें थकी हुई
दस की भी तो नहीं उमर
यह लगती पकी हुई
पानी बहते रहे नहर के
दाने कहाँ गये

अंधी योजनाएँ कागज
के हैं पहाड़ बुनते
तुम बच्चों के पेटों पर
ये खड़े पहाड़ा गिनते
बेधो उनको कड़ी नजर से
दाने कहाँ गये

(४ अगस्त '८४)

हल के फार हाथ में

हल के फार हाथ में हों तो
फिर कोई हथियार नहीं
सुनो शोषकों ! भूखे रहने
को हम हैं तैयार नहीं

बढ़ता गया तुम्हारा मन, हम मालिक कहते आये
जी-हुजूर में हरदम, अपना माथ रोपते आये
पैर हमारे पेटों पर रखने
से भी इन्कार नहीं
तुम्हें महल है, हमें हमारा
छोटा - सा घर - बार नहीं

तुम मौसम को भोग रहे, हम झेल रहे होते हैं
धूप और बरखा की होली, खेल रहे होते हैं
मगर कठिन अब सहना तेरे
रुतबे की दरकार नहीं
हाथ हमारे मिले; बचेगी
अब कोई दीवार नहीं

अब तेरी असलियत सामने, आयेगी खातों में
लहू सुखाने वाले लहू, बहायेंगे बातों में
जब तक सुखी समाज न होगा
लोग - बाग संसार नहीं
होगा युद्ध हमें रोकेगी
गोली की बौछार नहीं

(२७ मई '८१)

ईमान का गीत

कामगार मजदूर किसान
बेचेंगे न कभी ईमान

यह मँहगी की सत्ता तो, बिना तेल की बाती है
श्रम से गिरे पसीने को, आहिस्ता पी जाती है
श्रम के अधिकारों को लेने-
बनते हम आँधी-तूफान

सिर्फ जहाँ बहसों में ही, दहशत पलती : संसद है
लिखे हुए विधान की कोई उम्र नहीं, केवल कद है
शोषण के इन हथकंडों को
साफ करेगा लाल निशान

कई - कई रंगों की बत्ती में, भूले हम झूठे - साँच
राजनीति के नाटक-घर में कई नटकिये करते नाच
हम श्रमजीवी बहा पसीना
खत्म करेंगे रेगिस्तान

श्रम को सोख रहे जो अब तक, उन सरमायादारों को
देनी होगी सीख, छीन लेंगे अपने अधिकारों को
जले इजारेदारों के घर
कैद न होगा हिन्दुस्तान

(१५ अगस्त '७६)

रोटी का सवाल

रोटी हुई सवाल, भैया, रोटी हुई सवाल

मिहनत करके भूखे रहना अपनी नियति हुई
उस पर यह बेकारी, जिनगी भीगी हुई रूई
दिन पर दिन होता जाता है अपना खस्ता हाल
बहिना, रोटी हुई सवाल

कंधे पर से नहीं उतरता, कभी करज का बोझ
तानाशाही के पुर्जे को, अब तो लेंगे खोज
किन्तु महाजन हमें सताने लगता है हर साल
भैया, रोटी हुई सवाल

बोकर अपनी उमर खेत में हम क्यों जुल्म सहें
रोटी देनेवाले क्यों खुद को कमजोर कहें-
ऐसा कहनेवाला होगा कोई नया दलाल
बहिना, रोटी हुई सवाल

खूनी जबड़े तोड़ेंगे हम उनके कानूनों के
नया समाज गढ़ेंगे हम समता के मजमूनों से
हर मुश्किल पर दहक उठेगी अपनी लाल मशाल
भैया, रोटी नहीं सवाल
बहिना, रोटी नहीं सवाल

(२७ मई '७६)

रानी का गीत

रानी के पास हैं बहुत धन
हाथी-घोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

रानी न खेत जाये
करे न सिंचाई
रानी की थाल में है
खीर औ' मलाई
आग जो लगाये उनके
हाथ गोरे-गोरे
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

खटे न कभी मिल में
करे न कताई
रानी की देह पे है
रेशमी रजाई
पीठ के निशान भी न गिने
उनके कोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

रानी के पाँव लगे
नहीं धूल-छाई
रानी की भेंट चढ़ी
हमारी कमाई
चान औ' सुरुज हाथ उन्हें
सभी जोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

कौन कहे समय की भी
होती है सिलाई
काटता है वही जो
करता बोआई
कभी छोटी चिड़िया भी
बाज को मरोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

(१६ नवम्बर '८३)

राजकुँअर का गीत

मिहनत करें कमायें हम
फिर भी हम औने-पौने
राजा बाबू तुम जादूगर
तेरे चाँदी - सोने

ऊँचे - ऊँचे गुम्बज तेरे
ऊँची हैं मीनारें
तेरे कल - करखाने बुनते
ये ऊँची दीवारें
तेरे आगे तो लगते हैं
ये सूरज भी बौने

कागज पर छपकर आते हैं
तेरे रोज तमाशे
मेले में भी बजा रहे हो
बड़े जोर से ताशे
अंधियारे में डूबे हैं
अपने बीमार बिछौने

मिट्टी की धमनी से कढ़कर
आती जो आवाजें
देखो कहाँ-कहाँ पहुँची हैं
उनकी ये परवाजें
अपनी आँखें लग जाती तो
लगते नहीं दिठौने

(२७ नवम्बर '८०)

मौसम हुआ कबीर

इतना साहस भरा हवा में
मौसम हुआ कबीर
देख नहीं पाता कि समय ने
खींची कहाँ लकीर

बूढ़ी दादी के संग हुई
पुरानी कथा महल की
राजकुँअर पत्थर - गरीब
की बेटी काँच-कमल की
जलती झोंपड़ियों पर दिखे
ठहाके लिए अमीर

अपनी बदहाली का वे
उपहास बहुत करते
फिर भी मिहनत पर मारे
कुंडलियाँ वे रहते
अपनी तो दौलत है अपना
सँवरा हुआ जमीर

नजरें ज्वालामुखी हुईं
औ' बाँहें तीर - कमान
सुनते हैं ललकार समय की
महल हुए हैरान
हम आनेवाले कल, हमको
समझो नहीं फकीर

(१७ फरवरी '८४)

अपनी ताकत दरसा रे

भूख फेंकती खून; और तू आग न बरसा रे
बेईमान मौसम क्यों मारे बरछी-फरसा रे

हाड़ - तोड़ मिहनत भी करके
हम भूखे - के - भूखे
दिन-दिन हो निरुपाय, रहे हम
पानी में भी सूखे
लागे देश विदेश ; नहीं कुछ अपने घर -सा रे

तड़क रही पसली में जैसे
डंक कसे - से लागे
पता नहीं कैसे नवाब वे
हम होते हतभागे
चीख नहीं अब केवल; अपनी ताकत दरसा रे

हर मुँह मुहर लगे दाने की
आँख खुशी का पानी
आपस में मिल बढ़ें; कि टूटे
सत्ता की मनमानी
नई देश-दुनिया; शोषण जलता है डर-सा रे

(२४, मई, '८१)

दहक उट्ठी चोटियाँ

भैया रे भैया.....
अब न छीनेंगी हमारी रोटियाँ

बहुत हुई मेहरबानी अब
दूर - दूर से
अब न चलेगा काम महज
इस जी-हुजूर से
और न होंगी लाल उनकी गोटियाँ

भूखी - नंगी देह लिये
फौलादी सपने
फसल काटने को निज हाथों
लगे गरजने
अब न सूखेंगी हमारी बोटियाँ

होशियार; हम अंधकार में
आग लगायेंगे
नारे लिखते दीवारों पर
भात उगायेंगे
मुक्ति-खातिर दहक उट्ठी चोटियाँ

(२५ मई '८१)

आँधी चल रही है

फूटता सैलाब
आँधी चल रही है

हम लगे पहचानने
दुश्मन रगों को
और बेहतर जानने
बढते पगों को
एक सी है आग
आँधी चल रही है

खत्म होगी रात
पिघलेगा अंधेरा
जुल्म सत्ता का नहीं
सहना दुबारा
सुलगता है दाग
आँधी चल रही है

फिर समय ऐसे
तन कर हुआ तैयार
आग की बरखा, हुए
शोषक सभी लाचार
क्रान्ति का संवाद
आँधी चल रही है

(१० जून '८२)

गवाही मत देना

सत्ता करे सवाल, गवाही मत देना
अपना खस्ता हाल, गवाही मत देना

कैसे फ़सलें लुटीं खेत की
कैसे हाथ कटे
कैसे पेट हुए पीठों - से
कैसे लहू घटे
हर दिन हुआ अकाल, पड़ा कैसे तपना
भूखा - नंगा लाल, हुआ सब दिन मरना

कोरे बचपन सुनी कहानी
तरुणाई तक आयी
वहशी ताकत की चोटों से
धमनी भी गरमायी
उनकी दुहरी चाल, नहीं उसमें फँसना
बना हमें कंगाल, उन्हें आता हँसना

अब जब खुली जुबान
सहेंगे नहीं दुखों को
हुई लड़ाई तेज चले
दस्ते लड़ने को
किसकी हुई मजाल, हमें रोके बढ़ना
हों गरीब खुशहाल, यही अपना सपना

(२३ मई '८१)

मात उसे देनी है

किसकी जमीन, भइया, किसकी जमीन
जोते उसकी जमीन, भइया, उसकी जमीन

पसली के हल - फार, हाथ बने हथियार
खाद खून की बनी, फसलें हैं तैयार
पूरी देह है मशीन
पूरी देह है मशीन
किसकी मशीन, भइया, किसकी मशीन
बजे उसकी मशीन, भइया, उसकी मशीन

पसीना कहें जो पानी देह से गिरे
लोर वही बन जाये जो आँख में भरे
यही बात है महीन
यही बात है महीन
कितनी महीन, भइया, कितनी महीन
जैसे जिन्दगी महीन, भइया, जिन्दगी महीन

कौन मरे बारह मास, कौन रहे उपास
कहाँ पेट भरे दिन, कहाँ नींद भरी रात
कौन इतना जहीन
कौन इतना जहीन
चोरी करे वह जहीन, भइया, वह जहीन
मात उसको देनी है; चाहे जितना जहीन

(२२ नवम्बर '८२)

लाल कवच पहने

जिन हाथों ने हल जोते
जिन हाथों ने वस्त्र बुने
धन्यवाद उन हाथों-
के ही हैं सारे सपने

खान-खदानों में जो निश-दिन
जलती रहती आग
कल - कारखाने में जो खेले
इस्पातों से फाग
लहूलूहान समय को जिसने
रूप - रंग दिये अपने

पिघलाकर अँधियारे को जो
सुबहें सुर्ख निकाल
चिनगारी बोते हैं उनकी
खातिर जो कंगाल
अपनी ताकत तोली जिसने
मिहनत लगी चमकने

झोपड़ियों की आँखें खोले
ये उमड़े जन - ज्वार
आनेवाले कल की हँसी-
खुशी के पहरेदार
जुल्मों को नकारकर जिसने
लाल कवच पहने
(१८ अगस्त '८४)

बोने को चिनगारी

हमें गुलामी की हथकड़ियाँ पहनानेवालो
सुर्ख हुई है सुबह आज बोने को चिनगारी

स्वाद तुम्हें लग गया हमारे लाल लहू का
करना होगा ख्याल हवा में पलती लू का
हमें दमन की दाहक घड़ियाँ समझानेवालो
तेरे जुल्मों से बेहाल हमारी दुनियादारी

समय करेगा तेरे जालिम जुल्मों का निपटारा
मिहनत और पसीने का हर ओर बजे सुर प्यारा
छीन आँख से सुख की लड़ियाँ भरमानेवालो
होगी नहीं नींद और सपनों की ठीकेदारी

हथियारों के साथ उठेंगी अब ये हल की नोंके
अब न रहेगा राज तुम्हारा, तुमको दुनिया टोके
धरती पर आती थीं परियाँ, बहलानेवालो
बेनकाब कर देगी मिहनत तेरी चोरबाजारी

(१८ अगस्त '८४)

देश की लाठी हम हैं

कैसे नाम बताऊँ; कौन - सा घर है, कौन - सा देश
मिट्टी - पानी से मिलकर ही बनता अपना वेश

जायदाद अपनी हैं क्या
ये दो आँखें, दो हाथ
उजले कपड़ेवालों से
अपना होता कब साथ
नफरत होती जब आता जालिम - सा कोई पेश

पुरखों से है मिला हमें
नादानी का उपहार
जन्मदिवस तक खुशियों में
हम करते नहीं शुमार
पैदा होते ही मर जाते अथवा भोगें क्लेश

मिट्टी हुई मुलायम अपने
पीकर श्वेत पसीने
हमसे खुशबूदार हवा है
मौसम जड़े नगीने
अंधकार से नहीं बँधेंगे नहीं लगेगी ठेस

महलों से अब उतर रोशनी
झुग्गी तक पहुँचेगी
अपनी माँ-बहनें भी खुशियों
से आँखें आँजेंगी
देश की लाठी हम हैं, हम से ही बनता है श्लेष

(१६ अगस्त '८४)

मौसम बड़े कमीने

मौसम बड़े कमीने
शाखों पर फूलों को देते
नहीं कभी ये जीने

जिस मिट्टी को चंदन-सा
हम भालों पर रच लेते
देख उसे टेढ़ी नजरों से
उसका सुख हर लेते
पानी-पानी हुई हवा, सूरज
भी दुख से भीने

पेट बाँध चिड़िया सोती
सड़ते जाते हैं दाने
सपने गड़ते - से हाथों में
जैसे ताल - मखाने
मेहनतकश हाथों का कैसे
खून लगे ये पीने

बुझे हुए चेहरों की भाषा
कभी नहीं पढ़ पाते
नीले जल के तालों पर
सौ - सौ बारूद बिछाते
सुर्ख सुबह यह मगर नहीं
बेचेगी लाल पसीने
(३० जुलाई '८४)

बारूद बिछा देंगे

पहले तेरी कुर्सी पर हम फूल चढ़ाते थे
अब तेरी कुर्सी पर हम बारूद बिछा देंगे

सारे के सारे इतिहास
निगलकर जनता के
भात बचाये तुमने अपने
मिलकर सत्ता से
पहले अपने कर्जे में हम जान गँवाते थे
अब कर्जे की खातिर तेरी जान वसूलेंगे

हवा और पानी जैसे
पेटों पर अंकुश तेरे
तेरे महलों में रोशनियाँ
जलती - साँझ सवेरे
पहले बोझा ढोकर अपनी रीढ़ झुकाते थे
अब तेरी रीढ़ों पर अपना जोर लगा देंगे

फर्क बढ़ाती गयी गरीबी
और मुनाफाखोरी
जंगल के कानून सजाये
तेरी स्याह तिजोरी
पहले शोषण की अंधी घाटी में बहकाते थे
अब शोषण के मन्सूबों को खाक बना देंगे

(२८ जुलाई '८४)

पेट की आग

कोड़ों के पीठ पर निशान लगे दुखने
पेटों की आग लगी आँख में उतरने

धूप, धूल, धुआँ भरे
मौसम की पूँजी
सपनों में कहीं भरी
थाल एक गूँजी
बच्चों की हँसी, नींद दिन लगा पहनने

सुबहों के पास टहल
रहे जो अँधेरे
दीख रहे कँपते - से
उनके भी घेरे
साँझ, मेघ, उत्सव अब सब लगे सँवरने
बनने को बहुत बने
खून ये पसीने
चुरा लिये तुमने वे
कीमती नगीने
शतरंजी चालों को लगे हम समझने
पेटों की आग लगी आँख में उतरने

(२५ नवम्बर '८३)

भूखों नहीं मरेंगे हम

बन्दोबस्त हुआ अच्छा अब
भूखों नहीं मरेंगे लोग
अपने ही सपनों को खाकर
अपना पेट भरेंगे लोग

घर के सर्द हुए चूल्हे तो
इससे क्या बदहाल हुए
राजकुँवर की अगवानी में
कितने मालामाल हुए
पानी की कीमत पूछेंगे
प्यासे नहीं रहेंगे लोग
पूँछ उठाये मछली जैसे
खुद से जिक्र करेंगे लोग

इससे क्या आगों की धमकी
मिली आज झोंपड़ियों को
बात - बात में करें उतारा
हम आँखों में परियों को
कागज के दस्तावेजों से अब
अपनी उमर गढ़ेंगे लोग
पत्थर पर भी खुदी रोटियों
की खातिर ललचेंगे लोग

कच्चे घर से वर्षा में भी
तने हुए जो हाथ यहाँ
खुशियों की खातिर वे कब से
जूझ रहे हैं यहाँ - वहाँ
बेजुबान इस बस्ती को
अब पूरा मुखर करेंगे लोग
खुशियों को कालेपानी से
वापस वही करेंगे लोग
(१४ फरवरी '७८)

अलाव का चारण

होठों पर रचकर आये हैं
गीत नया बदलाव का
सुनो साथियों रात बनी है
चारण इसी अलाव का

आज मनाही है धूपों में
फूल उगाने की
और हवाओं के झोंकों पर
तान उठाने की
कदम - कदम पर गढ़ा जा रहा है
धोखा आम - चुनाव का

जीवन जहाँ जिया जाता था
हरे - भरे खेतों में
हम तो उनसे हुए बेदखल
खड़े हुए रेतों में
कोई तो रस्ता निकलेगा
अपने सही बचाव का

आनेवाली आँधी की
बेशक आवाज सुनो
सख्त और अनगिनत हुए जो
ऐसे हाथ गिनो
जान गये हम पता खुशी के
अगले नये पड़ाव का
(१ फरवरी '८४)

करती रोशनी सुराखें

टूटेंगी - टूटेंगी काली रातों की शाखें

कहती रहती तब अपनी बूढ़ी दादी
देखी नहीं कभी ऐसी कड़वी आँधी
नोंच - नोंच कर
गिरा गयी हैं चिड़ियों की पाँखें

सड़ने लगे जमे हुए गाँवों के पानी
हल्की हुई देखकर गिद्धों की हैरानी
अब तालों पर
लगी हुई हैं रानी जी की आँखें

फिर से अबकी बार हवा यह तेज हुई
कसी हुई मुट्ठी को ठेक - सहेज गई
और अँधेरे में
करती है अब रोशनी सुराखें
(२२ मार्च '८३)

बँटवारे का गीत

नदी, झील, झरने सब तेरे
अपना कच्चा घर - ओसारा

तुम महलों के बाबू
छेड़ते रहते रेशम तानें
मैं झुग्गी का हलवाहा
आता बाँसुरी बजाने
सपने सिंके हुए दिन तेरे
हमको पालों ने मारा

बच्चे लिए हमारे फिरते
हैं लकड़ी की पाटी
तेरे लिए देश के कागज
लिखते हैं परिपाटी
सूने गाँव हमें अब घेरे
शहर - दर - शहर जैसे कारा

दिन - पर - दिन हम सूख रहे
तेरा भारीपन बढ़ता
अब किस आरी से काटोगे
खून नहीं है कढ़ता
भला इसी में कर दो प्यारे
अधिकारों का सम बँटवारा

(२२ मार्च '८३)

फूल बोलेगा

यह मौसम बोले न बोले, फूल बोलेगा

कौन कहता टूटता है नहीं
दारुण लौह - पहरा
यह समय होता नहीं है
कभी अंधा और बहरा
हमारा श्रम ही हमारे बन्ध खोलेगा

नदी किनारेवाले घर हम
नहीं कि कट जायें
सुबह जिन्हें माथे पर लिखती
वही पसीना गाये
जड़, टहनी, कोंपलों में स्वप्न डोलेगा

मुश्किल की चट्टान लाँघ-
कर जंगल पार किये
जहाँ कहीं आ सकते हैं
हम लाल मशाल लिये
लाल आँखों में न कुहरा धुंध घोलेगा

(२५ मई '७६)

भरे पेट वाले दिन

खाली पेटों वाले बीते
भरे पेट वाले दिन आये

आँगन भर हम घूम - घूम कर
नाच रहे हैं तकली जैसे
पोर - पोर बजते देहों के
कसे हुए मादल हों ऐसे
पहले हँसते ही रोते थे
रोते हँसने के दिन आये

फसलों ने जोड़ा है हमको
धरती के रेशे - रेशे से
दुःख ही हमें बड़ा करता है
हम जीते इसी भरोसे से
धूप हवा की पूँजी अपनी
इसे लुटाने के दिन आये

आते फागुन पीले होंगे
हाथ सयानी -सी बहिना के
रेहन लगा खेत छूटेगा
कर्ज उतारेंगे लहना के
बागों में अठखेली करते
झरबेरी वाले दिन आये

(२२ सितम्बर '८३)

बाँटो तुम चिनगी

सड़को पर बनते जुलूस, देखूँ अब मेरे बेटे
लगता एक गलत आजादी, तेरे हाथ लगी

मिहनत तेरी नये सिरे से
इस मिट्टी को बुनती
धरती के रेशे - रेशे को
ताकत देकर रचती
अगहन हो या पूस, हाथ कटते जब तेरे बेटे
काली आँधी में फौलादी, आग नयी सुलगी

पूरा एक बसंत उठी
बाँहों में खिलता है
कई भूमिगत आगों में संकल्प
निखर चलता है
बने बहुत फानूस, होश में आओ मेरे बेटे
देखो सिर पर लिए मुनादी,पेड़ों की फुनगी

रोप समय को पौधे-सा तुम
इन्तजार हो करते
स्याह व्यवस्था को अपने
मासूम खून से रंगते
दहके लाल बुरूश, दहकते तुम भी मेरे बेटे
हवा घूमती बन शहजादी, बाँटो तुम चिनगी

(१७ फरवरी '८४)

कर्ज का हिसाब

चौतरफ उस खेत के सामने होकर खड़े
पढ़ते हैं बाप - दादों के कर्ज का हिसाब

कैसे सब बेदखल हुए
हुई उँगलियाँ टेढ़ी
कैसे खाली हुआ भरा घर
भूख बन गयी सीढ़ी
उनके शोभा वृक्ष हुए हैं राजमहल - दरवाजे
हमारे लिए लिखी कितनी कर्ज की किताब

पाँवों की हर मोंच कहती
कितनी बार गिरे
फसलों के साथ रात भर
जलते जंगल हरे
चुप्पियों में सेंध मारे हवा के टुकड़े
पूछते हैं पुराने सब कर्ज के फैलाव

सूने बरगद की छाँह में
जले सूखे पत्तों के ढेर
उजली हँसी में लिपटी
अब जगी सुबह की टेर
पूरी - पूरी बस्तियाँ बहाकर ले गये थे
रुकेगा, हाँ, रुकेगा उस कर्ज का हिसाब

(२२ अगस्त ८३)

जंगल में बदली कौम

हम जानते तुम कौन हो, तुम कौन
बच्चों की है हँसी चुरायी
उनसे बचपन छीने
गाँव, शहर, कस्बों पर फैले
तेरे जाल कमीने
हाथों में चाकू हैं, लेकिन होंठ तुम्हारे मौन

तुमने मेहनतकश मजूर के
पेट हमेशा काटे
पीठों को कातिल गरूर के
बढ़े बोझ से पाटे
जंगल में बदली अपनी यह कौम

कैसे बनीं यहाँ पर जेलें-
पुलिस, कचहरी, थाने
कुत्ते की पहरेदारी में
हुए भात बेगाने
जुल्मों ने पिघलाया जैसे मोम

अब तो हम अनजान नहीं हैं
अपने अधिकारों से
शोषण का न जहर पी सकते
सरमायादारों से
अब तोड़ेंगे जुल्मों के सागौन
(२२ जुलाई '८४)

तने हुए कच्चे घर से

तेरे बाबू लाते थे कर्जे में गेहूँ के दाने
तेरी ही खातिर आती थीं घर में कुछ खुशियाँ बेटे

तेरी माँ धरती - सी सपना
बुनती खुशहाली का
बोझ उठाती है छाती पर
दुखती बदहाली का

अँतड़ी की ऐंठन में खोजें हम इस जीवन के माने
जब भी चमका करे तुम्हारे हाथों में हँसिया बेटे

भीग -भीग कर वर्षा में कुछ
तने हुए कच्चे घर से
तुमको बढ़ते देखा मैंने
उस अनथके असर से

अपनी हालत बदलेगी, बदलेंगे मौसम के गाने
मिहनत के बहे पसीने ही बनते हैं अब मसियाँ बेटे

अपने घर में आज तलक जो
बना रहे थे तहखाने
उनसे ही खुलने को हैं उनके
जुल्मों के अफसाने

झोपड़ियों की आँखें लेंगी लील कचहरी - थाने
इतिहासों की कथा बदल देंगी तेरी हँसियाँ बेटे

(२५ जून '८४)

खुशबू का आखर

पीले कनेर से हथेली रंग देती
पैनों के ताजे निशान मेट देती

फूलों की डाली - सा अपना घर होता
खुशबू का आखर आंगन - भर होता
फसलों पर मिहनत का हस्ताक्षर होता
थकानों को आँचल में समेट लेती

मगर हमें चैन कुछ सवाल नहीं देते
भूख से रोटी की थाल छीन लेते
रक्तहीन कैसे हम चाल जान लेते
खेत- खलिहान को थमा सिलेट देती

धीरज़ बुरा है; अब मेहनतकश जागेगा
वर्गहीन हो समाज - यही शंख फूँकेगा
हर रोटी पर भूखे का नाम लिक्खेगा
सपनों को नहीं होने कभी रेत देती

(१४ मई ' ८०)

आँखों का सपना

टूटा ही है घर वह
पर कितना अपना है

हाथों रोक लिया करते
छानों से चूते पानी
कभी नहीं सर्दी - गर्मी से
हुई हमें हैरानी

दो जोड़ी आँखों में
एक हरा सपना है

ऊँचा डीह लिये घूरा
करते थे महाजनों को
नदी, झील, झरनों जैसे
अपने भाई - बहनों को

फसलों की देहों में
दानों का तपना है

थाम हाथ से पेट भूख की
तनी कमानें होतीं
धानों की ढेरी सी बच्चों
की मुस्कानें होतीं

खोटी नीयत वालों को
भय से हरदम कँपना है

(२१ सितम्बर '८३)

सही फैसले का गीत

सही वक्त पर सही फैसला
ले ही लेंगे हम
चाहे कितना ही ताकतवर दुश्मन आदमखोर

बच्चों के हाथों पर रखते
जो टिन की बाटी
रखने देंगे नहीं; तोड़ देंगे
पिछली परिपाटी
पानी के दर नहीं बिकेगा; खून बड़ा शहजोर

झुग्गी-झोपड़ियों की ताकत
रहे दबाते जो
फूटेगी हड्डी से चिनगारी
देखेंगे वो
चाहे तेज करो संगीनें-सीने बढ़े करोड़

नया समाज गढ़ा जायेगा
मिट्टी-श्रम-पानी से
मुक्त करेंगे जन - जन को
सत्ता की मनमानी से
पत्थर की दहलीज नहीं हम; समझ मुनाफाखोर

(२१ अप्रैल '७६)

खुशियों की ताबीज गले में

सुबह हुई आँगन में गमकी
धूप किसी पकवान - सी

घट्ठे पड़े हुए हाथों से
पकड़ हथौड़े की
गढ़ती है औजार गढ़े जो
मूरत रोड़े की
खुशियों की ताबीज गले में
बच्चों की मुस्कान - सी

सर पर बोझ सम्हाल फसल का
नये समय को रचता
मुट्ठीबन्द इरादों में है
मुक्त भविष्यत बजता
हाथ बाँधकर भूख भगी
है खिड़की खुली दलान - सी

केवल बाग नहीं फूलेंगे
खुशगवार पल भर होगा
अपनी सधी निगाहों में सुख
समता का अक्षर होगा
गूँजेंगे चौराहे, गलियाँ
होंगी मंगल - गान - सी

(२२ नवम्बर '८२)

बदलाव का गीत

रचो समय को माथे पर
अब लाना है बदलाव

केवल कहना देह हमारी नंगी
पेट है खाली
इससे कभी न आ सकती है
जीवन में खुशहाली
काटो अंधकार का जंगल
फूँको नया अलाव

कर्ज लेते दादा की सारी
जमीं बिक गयी
पेट - पीठ - हाथ से बेदखल
आँख दिख गयी
बाप पुआलों के घर में
रहकर सहता पथराव

नयी शक्ति के साथ बढ़ेंगे
बिरिछ बाग के
हर कुहरा जल जाये आगे
तेज आग के
पानी पर अब चल न सकेगी
यह कागज की नाव

(२२ नवम्बर '८२)

किसानों का गीत

जागते रहो जवान देश के
ओ मजूर; ओ किसान देश के

पहरेदारी करती है गर्म हवा
टूटेगी मौसम की मनमानी
शिरा - शिरा कौंधती बिजलियाँ
खून नहीं बन सकता है पानी
अंधेरे मिटाओ अब देश के
ओ मजूर; ओ किसान देश के

टूट न पाये हँसी आँख की
यह है अपनी जिम्मेदारी
भूखा - नंगा किलक उठेगा
मुक्ति - युद्ध अब होगा जारी
अनगिनत उठे हैं हाथ देश के
ओ मजूर; ओ किसान देश के

बाजुओं का दम - खम कभी
वे लूट नहीं पायेंगे
मिहनत और समता का
अर्थ भी जान जायेंगे
हौसले न टूटेंगे देश के
ओ मजूर; ओ किसान देश के

(१७ अक्तूबर ' ८०)

लड़ना अधिकारों की खातिर

तेरे लिए यह सीख, राजा भइया
लड़ना अधिकारों की खातिर
नहीं माँगना भीख, राजा भइया

हर सवाल का जवाब इन्कलाब है
रोटी हमारी अब नहीं ख्वाब है
शोषण औ' जुल्म की लिखी किताब है
लहू जाये पन्नों पर दीख, राजा भइया

अब तक जैसे हमारे दादे - परदादे
पूरा-पूरा होकर भी लगते आधे-आधे
रोटी की नीलामी पर भी रहे मौन साधे
कई - कई विदेहों के सरीख, राजा भइया

फाड़ेंगे हम पहले शोषण के दस्तावेज
खानों या खलिहानों से नहीं हमें परहेज
अधिकारों की खातिर होगी अभी लड़ाई तेज
कभी नहीं छपेगी अब चीख, राजा भइया

(१४ मई '८०)

बहती नदी का गीत

यह नदी बही है सदियों से
सदियों तक बहती जायेगी
अपनी मेहनतकश बाँहों से
धरती का बोझ उठायेगी

भूखी - प्यासी रहना इसकी
आदत नहीं हुई
कभी जोर - जुल्म की दहशत
इसने नहीं सही
रक्षा - कवच स्वयं पहने
जनम लेती ही जायेगी

कोई कभी जो इसकी
राहों में आयेगा
अपनी तानाशाह नीति की
आँखें दिखलायेगा
शत - सहस्त्र धारों में
अग्निमुखी बन जायेगी

बच्चों की मुस्कान समेटे अपनी
लहर - लहर में
शोषणहीन समाज बने हर
कस्बा - गाँव - शहर में
पूरा हो जब तक लक्ष्य
युद्ध लड़ती ही जायेगी

(१६ जून '८१)

मिहनत का गीत

चल मिहनत कर, मिहनत से न डर
मिहनत से ही तू जीत समर

बड़ा पाप है भूखा रहना
सदियों तक नंगापन सहना
बाँहों - सी अपनी फसलों का
खेतों में मालिक से बँटना
वे चढ़े हुए शोषण - रथ पर
उनके पहिये की धुरी पकड़

फौलादी बांहें फड़क उठें
हम सभी साथ मिल गरज उठें
दुख में हम बनें पहाड़
पहाड़ों के गौरव से बरज उठें
यह उजली खुशी तुम्हारे घर
बच्चों की थामे बाँह निडर

शोषक से नफरत और बढ़ी
बारूदों - सा गुस्सा सुलगा
इसकी क्या हो परवाह कि वह
किस ओर गिरा, किस ओर भगा
उस नीच - कमीने से डटकर
अपना हिस्सा ले हासिल कर

(१४ मई '८१)

सुनो तेज रफ्तार खून की

जैसे भी हो जोर लगाओ, भाई मेरे
इस पथरीले अंधकार को दूर भगाओ

आध हँसी हँसकर सोनेवाले बच्चों - सी
यह दुपहर उदास लगती है घर की
पैबन्दों में ढ़ंकी हुई दो साल पुरानी
साड़ी देती खोल असलियत बुझी उमर की
हो न हो मगर दुहराओ, भाई मेरे
इस काले क्षण के साये को मार भगाओ

ये नापाक इरादे, आदमखोर हरकतें
चैन नहीं लेने देती हैं बरसों से
देह पर सन्नाटा खींचे भूख बाँटती
कोई पैनी आग खींचकर तेज नसों से
चलो, मिलाकर हाथ बढ़ाओ, भाई मेरे
सुनो तेज रफ्तार खून की, कदम बढ़ाओ

शोषण की सब जड़ें काटकर हाथ हमारे
समता बाँटें, नई फसल के बीज उगायें
जन - गन की खुशहाल जिन्दगानी की खातिर
दुश्मन को पहचान समय की मांग पुरायें
जैसे सूरज आता आओ, भाई मेरे
मां की गोदी में बच्चों - सी सुबह जगाओ

(१३ मई '८१)

कटाई का गीत

दिन आये फसल कटाई के
बड़का की सुघर कमाई के

बेटी आई घर महक उठा
आंचल में हल्दी - धान लिए
छोटे के भाग - विहाग हुए
बाजू में तीर - कमान लिए
दिन काटे परवत - राई के
फटते कुरते में भाई के

भौजी के माथ सिनूर लाल
आतप में रक्तपलास खिले
जंगल में जलती आग दिखे
असमान किनारे ढहे किले
भरते हैं घाव बिवाई के
किस्से ये दूध - मलाई के

भात मिले भर - भर थाली
बच्चों की खुशी आकाश लगी
पपड़ाये होंठों पर जैसे
बिरहा - कजरी की प्यास जगी
अपने मिहनती सिपाही के
ये हिस्से कड़ी लड़ाई के

(२४ मई '८१)

माँ का सपना

माँ; तेरी बड़ी - बड़ी आँखों ने
देखा एक बड़ा सपना

तेरा बेटा धरती की
बेड़ियाँ जलायेगा
लाखों भूखे - नंगों का
घर - बार बसायेगा
जम गया स्वप्न ध्रुव आँखों में
मन को छोटा मत करना

छिल गये बदन उसके
इन - लौह सीकड़ों में
यहीं जनम लेंगे उनसे
फौलाद सैकड़ों में
इतिहास रचेगा आँखों में
फूल, आगवाला झरना

फैल गया तूफान, अरे
पत्तों के जंगल में
होगी जिन्दगी समान
इन्हीं आनेवाले कल में
तुम तपो कि भर लो आँखों में
धरती का पूरा सपना

(२४ मई '८१)

इरादे बेहद कड़े हैं

वही विषधर, वही सब कुछ
वही मेला है
पर हवा के पांव में कांटे गड़े हैं

अभी तुमको खूब आता
सही सूरज को फँसाना
हर ग़लत कानून रच कर
नये शोणित का बहाना
आज तेरे जुल्म तुमसे भी बड़े हैं

गलियों से निकली धूप
को बेहोश करने को
फिर रची साजिशें तुमने
सोख लेने को
पर हमारे इरादे बेहद कड़े हैं

पिस रहा - सा आदमी
चन्दन उगलता है
स्वागतम् आ रहे युग का
खून लिखता है
पसीना है जमीं जिस पर हम खड़े हैं

(२६ नवम्बर ' ७६)

प्रतिगामी चेहरे का गीत

प्रतिगामी संलग्न चेहरे
या तटस्थ - से पिटे मोहरे
सब के सब मुझको लगते हैं दबे और बीमार

हाथ - हाथ मशाल जलाये
खोज रहे हैं हम
बैठा होगा कहीं अंधेरा
लगा पाँव मरहम
बेनकाब जो इसे करे वह सकता कभी न हार

विषधर ने फिर से फैलाया
है जहरीला जाल
मोर सरीखे बने हुए हम
होंगे नहीं निढ़ाल
अपने लिए समय को हमने किया भला तैयार

नहीं दीखता समझौतों में
हमको अपना हल
फिर से समझ गये हैं तेरी
चालाकी और छल
अपने हिस्से ले लेंगे हम पिछले कई हजार

(१५ अक्तूबर '७६)

रोशनियों का तय होना

अपनी ही ऊसर पीठ थी भाई
मालिक ने जिस पर मशीन बिठाई

मशीन चली थी जिनसे
वे हाथ हमारे ही थे
बोने से लेकर कटने तक
के साथ हमारे ही थे
पर थाली भर भूख - जमा कमाई
अंधियारे ने ऐसी चाल दिखाई

देख रहे कैसे चिड़िया
छूटे बाजों - सी उड़ती
नदी - पहाड़ों के ऊपर
अपने गीतों को करती
काले पहरों पर पुल दिया दिखाई
गमलों में कांटे की बेल उगाई

रोशनियों का तय होता
यह सफर अंधेरे में
चट्टानों की छाती नहीं
दहलती घेरे में
अपनी सांस धमनभट्ठी में आई
आग नयी है हमने यहाँ जलाई

(१ फरवरी '८४)

बाढ़ की कथा

गेहूँ की बालियाँ गिनें
कहें गयी बाढ़ की कथा

कैसे करमी खाकर दुखनी ने
जीवन के सात दिन गुजारे
रजुआ की देह थर - थर कांपी
फटा अंगोछा के सहारे
जुते, बुने और अधबुने
लिखी हुई खेत की व्यथा

सींचे थे जिससे हमने
पानी नहीं थे वे पसीने
रोम - रोम होकर वे फूटे थे
जीवन के कीमती नगीने
सूदखोर इस तरह तने
जैसे सब उनका ही था

अपना तो सब कुछ गिरवी में
बच्चों के दूध, नींद, सुबहें
बाबू की धँसी हुई आंखों की
कसमों को बांधकर कहें
समय के पैगाम को सुनें
बदलें यह स्याह व्यवस्था
(२६ सितम्बर '८३)

आँखों पर ताले

फसलें हैं कटती गयीं-
बाध - वन सूने लगते

अपने हाथों की छुअन
अभी जीवित रेहों में
खेतों में ही नहीं फसल
कटती रहती देहों में
ठनकते बोल हवा में-
सकल सुख दूने लगते

नहीं अकेले थे हम
पूरा घर खेत बना था
कितना उत्साह भरा मन
कैसे तो रेत बना था
दीखते महाजनों के-
आग मन छूने लगते

गोदामों में अन्न सड़े
पेटों में पड़ते जाले
द्वारे हैं फूले कदम्ब
अपनी आँखों पर ताले
आग भरी मुट्ठियों से-
इरादे बूने लगते

(२४ सितम्बर '८३)

हमें खराब लगे

अपने सभी रवैये बदलो
हमें खराब लगे
यह नकली अनुशासन बदलो
हमें खराब लगे

भूखों की आँखों में देकर
रोटी के सपने
और सवालों के जंगल को
धुआँ-धुआँ करने
अपने चोर इरादे बदलो
हमें खराब लगे

हाथ बढ़ाकर माँग रहे
अपने अधिकारों को
राहों की गर्दों में ढलते
सुन्दर आकारों को
सीने को पत्थर में बदलो
हमें खराब लगे

राहों की खुरदुरी जिल्द में
जब हम बँध जाते
जलते हुए सवाल हमें
भीतर से सुलगाते
इस बदशक्ल वक्त को बदलो
हमें खराब लगे

(१४ फरवरी '८४)

फौलाद बनेंगे

आग तपे लोहे फौलाद बनेंगे
जन की मुक्ति के संवाद बनेंगे

हाथों की ताकत से बजने लगेंगे
मिहनत के जंग लगे ताशे
भरेंगे घर को हम भी; गलने न देंगे
आँख - सी फसल बारहमासे
इरादों में कितने ही चाँद बुनेंगे
जन की मुक्ति का संवाद बनेंगे

ये जो खुशबुओं सनी वृक्ष-वनस्पतियाँ
हमारे ही छूने से उगीं
जितनी भी झाँकोगे गाँव-डगर-गलियाँ
अपनी ही आँख-सी जगीं
खुले हुए हाथ दिनों बाद तनेंगे
जन की मुक्ति के संवाद बनेंगे

(२६ नवम्बर ' ८३)

सुविधा का मौसम

सुबह लिखे शाम को मेटे
सुविधा का मौसम
जिन हाथों ने खंजर बोये
बाँट रहे मरहम

दिन की धज्जी-धज्जी होती
रातों के टुकड़े
जोखिम भरे मिले हैं अवसर
जीवन के कतरे
भूखों ने सड़कों पर गाड़े
कई बड़े परचम

दीवारों पर बिछ अताड़यों
को कानून दबाये
आँखों के गहरे उबाल में
दुख जैसे जल जाये
मिहनत के हिस्से में आयी
रेहन पड़ी रकम

भूखे पेटों से भाषा तक
दबी आग सुलगायें
बच्चों की मुस्कानों-से उगते
दिन को चमकायें
फौलादी संकल्पों से ही
बढ़ते रहे कदम

(१६ जुलाई '८२)

धूप-छाँह का गीत

सबके जाने का सूनापन
सबके आने की खुशहाली
यह दिन जैसे धनखेतों की हो
धूप - छाँह

भला - भला लगता है अक्सर
गीले कपड़ों - सा फैला रहना घर पर
खिड़की के बाहर अड़हुल की छाँह-
चिड़िया जैसे चहके छन भर
सब के होने का अपनापन
मोतिया हँसी घुंघरू वाली
यह मन जैसे ताबीज बँधी हो कोई
सुकुमार बाँह

पर्वत पर आग लगी हो जब
चमके हों कच्चे शालवनों के तन
चम्पिया इरादों को उँगली में भर
मूँगे की अंगूठी-से सहज पहन
सब के पाने का कच्चापन
ज्यों बजी नदी में भटियाली
यह क्षण जैसे बाँसुरी टेरते हेरे कोई
कठिन राह

(२२ नवम्बर '८२)

हल-सी जिन्दगी

आ गये
काली आंधियों के दायरे में हम
खेत में जलती फसल - सी जिन्दगी

फसल जैसे आइना हो
निरखते थे रूप
बांह में हरियालियां पहने
पकड़ते थे धूप
फूल की खुशबू कहाँ कुम्हला गयी
रेत में धँसते कमल - सी जिन्दगी

दहशतों की नीन्द में सोयी
हर गली, हर मोड़
देर कुछ जीकर मरा है
रोशनी का मोर
छू गया हो पाँव जैसे आग से
धुंआ, कुहरा, रेत - छल - सी जिन्दगी

वे भी दिन थे रंग पढ़कर
बताते थे नाम
अब हमारे हाथ को कंधे
नहीं हर शाम
भूत जैसे पेड़, पोखर, बस्तियाँ
बैल बिन बेकार हल - सी जिन्दगी

(२० अगस्त '८३)

घर में पूरनमासी है

भर - भर थाल भात के सपने
पेट नहीं बासी है
घर में पूरनमासी है

तीन बरस के बाद सिला कुरता एकरंगा
जाने कितना बचपन तब बीता अधनंगा
नये धान की गमक नाक में
ले गयी उदासी है

इसी बार हाथ ने हैं पैबन्द नहीं टाँके
लाल फूलवाली साड़ी के रंग बड़े बाँके
हाट खरीदी टह - टह लहठी
कस रही जरा - सी है

हाथों पर उग रही मेंड़, फसलों के नक्शे
नयी धूप के साथ बदलते मौसम जब से
बच्चों की मुस्कान नहाया
बरस बेरासी है

पातझोल खेलेंगे मिल - जुल अमराई में
सूखे - बाढ़ न होंगे अब फसल कटाई में
घर - घर बजे कबीर अंगना
मीरा हाँसी है
घर में पूरनमासी है

(६ मई '८२)

स्वप्न सबेरे का

टूटेगा कब किला अंधेरे का
ए बाबू, बतलाओ

धरती की भट्ठी में तपकर
झुलसे बहुत पसीने
खेत-खदान, मशीन, हलों में
धड़के अपने सीने
एक स्वप्न है सही सबेरे का
ए बाबू, थम जाओ

छाप लहू की छोड़ेंगे
ऊँचे होंगे मनसूबे
दखल करेंगे अधिकारों से
गांव, शहर, घर, सूबे
कदम-कदम पर नाच सँपेरे का
ए बाबू, दम ले लो

मिहनत के सैलाब फूटते
मन से हुए कड़े
भरे लबालब क्रूर जुल्म के
तेरे कई घड़े
फँस जाता है जाल मछेरे का
ए बाबू, सुन भी लो

(२१ अप्रिल '८३)

फूल की लाल पंखुड़ियाँ

बिंधी फूल की लाल पंखुड़ियाँ
कांट के वन में

भूख लिए रोटी के सपने
झुकी हुई पेटों पर अपने
पाँखें खुजलाती हैं चिड़ियाँ
कांट के वन में

जहां-तहां बबूल-वन फूले
उड़े धूल के बड़े बगूले
रेत हुई जलहीन मछलियाँ
कांट के वन में

खिला खेत में खून-पसीना
फलकी आस लिये यह जीना
तड़क रहीं कमजोर पसलियाँ
कांट के वन में

हाथों को मशीन - सा करके
बच्चों की हंसियों से भरके
सुबह उगी ज्यों लाल बिजलियाँ
कांट के वन में
(११ अप्रैल ' ८३)

दूध-फूल- से बढ़ेंगे

आज तक नहीं छूटी
रेहन पर लगी जो
जमीन पिछुवारे की
बहिना की शादी में

मेड़ पर उगा वह पेड़ अमरूद का
खेत के साथ ही महाजन का हो गया
हिलते हैं पत्ते अब भी अपनी आँखों में
नारंगी था अभी मन सहजन-सा हो गया

गेहूँ जो होता तो
कूट - पीस खाते;
पर कुछ भी हुआ नहीं
घुन लगी आजादी में

बाबा से बाबू तक यही तो हुआ
उम्र से दोगुने कर्ज में डूबे हैं
अपना तो डीह भी जायेगा सूखे में
घर से भी बेदखल पूरे ये सूबे हैं

यह जालिम घुसखोरी
कब तक छिपा रहेगा
अपना लाल सूरज भी

इस मोटी खादी में
भूखों की जमात लूटने चली
खेतों, खलिहानों, खदानों की थाती
अब मेहनतकश हाथ नहीं काटेंगे
चमकेंगे हँसिये के संग ये दरांती

दूध - फूल - से बढ़ेंगे
बच्चे कच्चे
ओसारों पर किलकेंगे
इस बून्दाबान्दी में

(२१ सितम्बर '८३)

अँधेरे के खिलाफ

लड़ते हैं अंधेरे के खिलाफ
उजाले से घिरे हुए लोग

चीखने के लिए अब फुरसत नहीं
अँधेरे में बैठना है पाप
छटपटाहट से न घिर सकते कभी
सर छिपाने से मिले अभिशाप
रोशनी की भूख में बेचैन
इरादों - से हरे हुए लोग

नहीं होते थे, अब मगर होंगे
इस अभिव्यक्ति के भी मायने
करने से क्यों दूर नहीं होंगे
तकलीफों के साये घने-घने
जान गये हैं भाषा भूख की
पहाड़ों-से खड़े हुए लोग

ये सरमायादार न अब तक समझे
जोर - जुलुम की अनसही सीमा
मगर वे खुदगर्ज अब कैसे जियेंगे
पसीने का हो गया बीमा
नयी जिन्दगी की तलाश में
ताकतों से भरे हुए लोग

(२६ मई ' ७६)

नौजवानों का गीत

दम साधे न रहो नौजवान
थाम लो अब हाथ में कमान

चाभी भरकर खेलें वे-
वैसे हम नहीं खिलौने
हम पर रख पाँव आकाश छुएँ
इतने वे नहीं सलोने
हो जाओ सभी सावधान
दुश्मन से लड़ना लो ठान

मिहनत करते हाथ जब दुखे
पाँवों के लिये सहारे
बंजर को हरियाली सौंपकर
अमन-चैन के बन हरकारे
हम से है धरती की शान
हम उगते सूरज की पहचान

अँधेरे की पाँख काटकर
रोशनी के नाम रुत लिखो
मेहनतकश जनता अब जगी है
ऊँघते हुए-से मत दिखो
फूटो ज्यों फूटते हैं धान
श्रम को अब सौंप दो निसान

(१३ जनवरी '७६)

रोशनी के काफिले

हम कामगार हैं ये हमारे रंग हैं
ये कुदाल- फावड़े ही हमारे अंग हैं

हाथ - हाथ से मिले
मिहनतों में ढले
ये सपन कारखाने और
खदानों में पले

हम यहाँ से वहाँ तक गोलबंद हैं

शोषणों के अँधेरे
बहुत हैं अभी
इन सवालों से सीधे
लड़े हम सभी

काफिले रोशनी के हमारे संग हैं

करना है हमें ही
हिसाब आज का
भूख - प्यासों से लड़ते
हुए समाज का

मुट्ठियाँ हैं तनी हौसले बुलन्द हैं

मर - मरकर जियें हम
जशन वे करें
नामुमकिन है ऐसे
जो छल वे करें

अपने हिस्से की खातिर छिड़ी जंग है

(२० नवम्बर '८१)

एक जोड़ा हाथ

सींखचों को पकड़ जेल के
ऊंघता है एक जोड़ा हाथ

याद आता बचपन का बार - बार रूठना
और अब खून के सागर में लेटना
साँसें अपने साथियों की
सूँघता है एक जोड़ा हाथ

सोचता है कहाँ खोया चेहरा अपना
सूद में उसने भरा ताजा हरा सपना
खूनी इतिहास का पहिया
रोकता है एक जोड़ा हाथ

सूर्य को लपेटे हुए अपने बदन से
हौसले तैयार, बाँधे सर कफन से
मुक्ति की शुभकामना ले
जागता है एक जोड़ा हाथ

(३० मई ' ८१)

वक्त फैसले का

यह मोड़ वही तो है, हम जिस जगह खड़े हैं
साथियों, जनम से ही समय से हम लड़े हैं

उस समय से जिसने -
छीन ली हमारी रोटियाँ
हमारी मिहनतों पर पल
रही हैं जिनकी बोटियां
हकीकतें देख - देख मन हो रहे कड़े हैं

चल नहीं सकेंगी अब
सितम की और आँधियाँ
जमीन फट पड़ेगी बोझ
से यहाँ जहाँ - तहाँ
सितमगर के फूटते ये पाप के घड़े हैं

यहाँ कहाँ लिखा कहीं
जमीन की किताब में
खून हम सुखायें किसी
गैर के हिसाब में
वक्त फैसले का यह, हम होते हरे हैं

आवाज सुन समय की
आग खुद सुलग रही
उठे हुए महलों से
झोपड़ी तलब कर रही
जमाने की हालत बदलेगी-हम बड़े हैं

(२७ मई ' ८१)

लोक–भाषा, संस्कृति, मुहावरों की निकटता से ये गीत जनता के निकट हैं। फिर इन गीतों में जनसाधारण के प्रति सहज लगाव है। भाषा की सहजता, लोकगीतों–लोकधुनों के अति निकट होने के कारण **"मौसम हुआ कबीर"** के जनगीत जनसामान्य तक पहुँचने में कारगर हुए हैं। इन गीतों में जन–जीवन के नये उभार हैं, नये तेवर हैं।

"मौसम हुआ कबीर" के गीतों में धार है–धार इसीलिए कि गीतकार जनवादी गीत–रचना से रूबरू वाकिफ हैं। ये गीत वस्तुपरक तरीके से सामाजिक विषमताओं को उकेरते हैं और आम जनता को शिक्षित करने की जिम्मेदारी को निभाते हैं। यह काम महत्वपूर्ण नहीं है कि कवयित्री मध्यवर्गीय संवेदना की भावगत कमजोरियों से बराबर उबरती आयी हैं। **"ओ प्रतीक्षित"** से **"मौसम हुआ कबीर"** तक की गीत–यात्रा इस बात को स्वतः उजागर कर देती है। जनवादी गीतकारों की राह जोखिमों से भरी है, जिसे शान्ति सुमन ने चुनौती की तरह स्वीकार किया है।

"मौसम हुआ कबीर" में कहीं बारूद की तरह फूटकर, कहीं बन्दूकों से लैस होकर जनक्रांति के लिए एकजुटं होकर अपना खून बहाते रहने की रवानी है। इन गीतों के शब्द लहू के कतरे हैं–संघर्ष से मिले हुए जनसाधारण के आँख–हाथ–पाँव–पेट हैं। इन गीतों के जरिये शान्ति सुमन आदमखोर इरादों के प्रति सतर्क हैं और सदियों से छीन लिए गये हकों को वापस दिलाने के लिए कृतसंकल्प हैं।

शान्ति सुमन

जन्म	:	१५ सितम्बर, १९४२
जन्म स्थान	:	उत्तर बिहार के सहर्षा जिला का कासीमपुर गाँव।
शिक्षा	:	बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर से वर्ष १९६५ में एम० ए० (हिन्दी) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण। वर्ष १९७१ में 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' विषय पर पी–एच० डी० प्राप्त।
वृत्ति	:	बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर के महन्त दर्शन दास महिला महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर।
कृत्तियाँ	:	**नवगीत संग्रह :** 'ओ प्रतीक्षित' (१९७०) तथा 'परछाईं टूटती' (१९७८) **जनवादी गीत सहसंकलन :** 'सुलगते पसीने' (१९७६) तथा 'पसीने के रिश्ते' (१९८०) **जनवादी गीत संग्रह :** 'मौसम हुआ कबीर' (१९८५) **उपन्यास :** 'जल झुका हिरन' (१९७६) **मैथिली गीत संग्रह :** 'मेघ इन्द्रनील' (१९९१) **शोध प्रबंध :** 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' (१९९३) **कविता सह संकलन :** 'समय चेतावनी नहीं देता' (१९९४) **गीत सह संकलन :** 'तप रहे कचनार' (१९९७)
सम्पादन	:	'सर्जना' (साहित्यिक मासिक), 'अन्यथा' (नवगीत के लिए प्रतिबद्ध अनियतकालीन)।
सह सम्पादन	:	भारतीय साहित्य, कन्टेम्परी इन्डियन लिटरेचर (अंग्रेजी) दिल्ली। बीज–पटना।
अन्य	:	देश की प्रमुख साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं प्रमुख आकाशवाणी तथा दूरदर्शन केन्द्रों से प्रसारित।
सम्पर्क	:	मीठनपुरा, क्लब रोड, रमना, मुजफ्फरपुर–८४२ ००२